

योग दर्शन में ध्यान के सूक्ष्म आयामः समापत्ति एक अध्ययन

सचिन भारद्वाज

शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

प्रो० गणेश शंकर गिरी

विभागाध्यक्ष, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

सारांश- योगदर्शन में वर्णित अन्तरंग व बहिरंग की साधना में अन्तरंग साधना के अन्तर्गत धारणा, ध्यान व समाधि को माना जाता है, अन्तरंग साधनों को मन के पार की यात्रा में एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है, संसारिक विषयों से अनासक्ति के भाव को बहिरंग साधनों यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार के द्वारा आंशिक रूप से प्राप्त कर लिया जाता है, परन्तु चित्त में उपस्थित सूक्ष्म संस्कारों को दूर कर परम सत्य की उपलब्धि मात्र बहिरंग से ही संभव नहीं है, चित्त में गहनता व दीर्घता से अपनी जगह बनाये हुए वासनाओं व स्मृतियों को नष्ट करने के लिये अन्तरंग साधना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह साधना चित्त को निर्मल कर ध्येय विषय में चित्त को एकाग्र करती है, ध्यान की अवस्था में साधक की ध्येय विषय के साथ एकात्मिकता सात्विक वृत्ति के द्वारा बनी रहती है, तत्पश्चात् साधक ध्येय विषय से सम्बन्धित विभिन्न सूक्ष्म आयामों को जानकर तथा क्लेशों को क्षीण कर साथ ही समापत्ति रूपी प्रज्ञा को प्राप्त कर क्रमशः सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है, समाधि प्राप्ति की अवस्था में उपलब्ध ज्ञान ही संसारिक विषयों के यथार्थ स्वरूप का परिचय हमें प्रदान करता है, बुद्धि के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने में समापत्तियों का ज्ञान योग साधना में प्रमुख स्थान रखता है।

मूल शब्दः चित्त शुद्धि, अन्तरंग, समापत्ति, ध्यान, योग

प्रस्तावना: भारतीय दार्शनिक परम्परा में योगदर्शन द्वारा प्रतिपादित साधना प्रणाली को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अधिकांशतः विचारधाराओं, सम्प्रदायों व मतों में देखा जाता है, योग द्वारा निर्देशित यह अनुशसित व व्यवस्थित मार्ग मनुष्य जाति को सत्य प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है, तन व मन दोनों की स्थिरता व शुद्धता को योग साधना में प्राथमिकता प्रदान की गयी है, महर्षि पतंजलि द्वारा 300 ई.पू. में 4 पादों व 195 सूत्रों में रचित यह शास्त्र शरीरिक, मानसिक, व आध्यात्मिक उन्नति के साथ-2 आधुनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली अनेकों समस्याओं का भी सकारात्मक समाधान प्रस्तुत करता है, योगशास्त्र में अन्तःकरण शुद्धि के लिये चित्त प्रसादन से लेकर शास्त्रानुकूल स्वमत अनुसार ध्यान करने जैसी अनेक विधियों की चर्चा स्पष्ट व संक्षिप्त रूप से की गयी है, महर्षि पतंजलि ने उत्तम, मध्यम व निम्न कोटि के साधकों के लिये भिन्न-2 विधियों का वर्णन किया है, मन निरन्तर विचारों की एक श्रृंखला में खोया रहता है, इन श्रृंखलाओं से निर्मित काल्पनिक दुनिया को वह यथार्थ समझने लगता है, जिस कारण उसकी जैविक उर्जा का एक बहुत बड़ा भाग इसी प्रकार के व्यर्थ चिंतन में चला जाता है, दर्शन का विषय मानव को यथार्थ सत्य से परिचित कराना है, भौतिक समृद्धि एक व्यावहारिक सत्य है, जो आज नहीं तो कल अपने स्वरूप को परिवर्तित कर अन्य किसी अवस्था को प्राप्त हो जाता है, मनुष्य की जिज्ञासा को गहनता से देखा जाये तो प्रतीत होता है कि वह एक ऐसे सुख की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील रहता है जो हमेशा निश्चल रहें, वह परिवर्तित न हों, हमारा मन हमेशा आनन्द से पूर्ण रहें, इसी सुख की खोज मानव को निरन्तर संसारिक विषयों में भ्रमणशील बनाये रखती है, योग दर्शन इस भ्रमण को एक उचित लक्ष्य प्रदान करता है।

योग ज्ञान किसी भी प्रकार के जाति, धर्म व सम्प्रदाय के बंधन में नहीं बंधता है, यह चित्त को अस्थिरता से मुक्त कर उसे उसके सार्वभौमिक धर्म कैवल्य की ओर अग्रसर करता है, संसार में उत्पन्न नित्य नवीन विचारधारायें भी योग के प्रयोगात्मक पक्ष की महत्ता को स्वीकार करती हैं, योग के द्वारा वर्णित प्रमुख साधना विधियों में अष्टांग योग का प्रचलन अधिकांशतः देखने को मिलता है, परन्तु योग दर्शन केवल इसी एक मार्ग तक सीमित नहीं है, अपितु अन्य विधियों द्वारा भी लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग का वर्णन करता है, वस्तुतः योगदर्शन एक आध्यत्मिक ग्रन्थ है परन्तु यह अपने दार्शनिक व प्रयोगात्मक सिद्धान्तों में समग्र व्यक्तित्व के उत्थान की संभावनाओं को छिपाये हुए रखता है, आज हमें आवश्यकता है कि हम योगदर्शन को पढ़ें तथा इसके ज्ञान का आचरण करने का प्रयास करें, तत्पश्चात् आप देखेंगे कि योगियों व संन्यासियों तक सीमित रहने वाली यह विद्या हमारे सामान्य जीवन को भी एक सकारात्मक दिशा दे सकती है, 20 व 21वीं सदी में योगाभ्यासों पर हुए कुछ प्रमुख वैज्ञानिक अनुसंधानों ने योग को मधुमेह, उच्च रक्तचाप, पाचन सम्बन्धी समस्याओं में व अनेक मनोवैज्ञानिक रोगों में बिना किसी दुष्प्रभाव के प्रभावी बताया है, योग विज्ञान मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ कर जीवन में आने वाली चुनौतियों के प्रति संतुलित दृष्टि प्रदान करता है।

अध्ययन क्षेत्र: योगदर्शन में वर्णित साधना मार्गों को साधकों की साधना स्तर के अनुसार तीन भागों में विभजित किया गया है, उत्तम साधक के लिये- अभ्यास और वैराग्य, मध्यम साधक के लिये- क्रियायोग तथा निम्न कोटि के साधक के लिये अष्टांग योग का वर्णन किया गया है, चित्त की क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र व निरुद्ध पांचों अवस्थाओं में समाधि की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु एकाग्र और निरुद्ध अवस्था में प्राप्त समाधि ही योग के अनुकूल है, आधुनिक समय में हमारे द्वारा आसन, प्राणायाम का अभ्यास ही मुख्य रूप से किया जाता है, परन्तु योग मार्ग में अधिक गहराई तक जाने के इच्छुक साधक धारणा, ध्यान व समाधि का भी अभ्यास करते हैं, साधना पथ पर आगे बढ़ते हुए उन्हें अनेक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है, उसका मन साधना से विमुख सा होने लगता है, ऐसी स्थितियों अपने मन को स्थिर कर, दुर्भावनाओं से दूर रहने के लिये महर्षि पतंजलि कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन करते हैं, प्रदत्त विधियों को सही प्रकार से अनुपालित करने पर साधक का चित्त निर्मल हो जाता है, तत्पश्चात् एकाग्र अवस्था में प्रवेश करता हुआ साधक का चित्त ध्यान का उच्च अवस्थाओं में पहुँचकर समाधि के गहन अनुभवों द्वारा विभिन्न स्तर की समापत्तियों में प्रज्ञा लाभ प्राप्त करता है। चित्त निर्मलता प्राप्त साधक के लक्षणों को बताते हुए महर्षि पतंजलि प्रथम पाद के 40वें सूत्र में निम्न प्रकार वर्णन करते हैं,

परमाणुपरममहत्वान्तो अस्य वशीकारः॥ 1/40॥

अर्थात्- चित्त निर्मलता व एकाग्रता के लिये पूर्व में वर्णित विधियों के अभ्यास के पश्चात् जब साधक के चित्त में संसार के सूक्ष्म पदार्थ परमाणु व विशालतम तत्व महत् को बिना किसी बाधा के ध्यान का विषय बनाने की क्षमता आ जाती है, तब उस चित्त को एकाग्र चित्त कहा जाता है, उपरोक्त वर्णित दोनों विषयों में ध्यान का अभ्यास करते-2 जब साधक के चित्त में अप्रतिबद्ध भाव आ जाता है- अर्थात् जहाँ इच्छा हो वही चित्त को एकाग्र करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जायें, उसी स्थिति को वशीकार कहते हैं।

सामान्यतः हम साधना का अभ्यास करते हुए विभिन्न प्रकार के काल्पनिक अनुभवों को विशिष्ट उपलब्धि मानने लगते हैं, इसी को ध्यान में रखते हुए महर्षि पतंजलि ने इस सूत्र का वर्णन किया है, चित्त की एकाग्रता के लिये बतायी गई विधियों को केवल समाधि प्राप्ति के लिये ही नहीं अपितु जीवन में उत्पन्न होने वाली दुर्लभ समस्याओं के सकारात्मक समाधान में भी प्रयोग में लाया जा सकता है, योगदर्शन में प्रयुक्त विधियों का अभ्यास सभी के द्वारा किया जा सकता है, विद्यार्थियों के लिये ये विधियाँ उनके अध्ययन में उनकी प्रभावी समझ के लिये, एक पेशेवर युवक को उसकी शारीरिक व मानसिक थकान मिटाने के लिये, एक ग्रहस्थ धर्म पालन करने वाले व्यक्ति को जीवन में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों से बचाने के लिये, एक वृद्ध मनुष्य को उसकी वृद्धावस्था से सम्बन्धित समस्याओं को दूर करने के लिये, ये सभी विधियाँ सहायक होती हैं, चूँकि योग ज्ञान किसी भी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से सीमित नहीं होता है, योग द्वारा प्राप्त लाभ प्रत्येक मनुष्य को उसकी वर्तमान स्थिति के साथ बेहतर तरीके से सामंजस्य करना सीखाता है, चित्त की स्थिरता में सहायक वर्णित विधि यो सूत्र संख्या- 1/32,1/33,1/34,1/35,1/36,1/37,1/38,1/39 में दी गयी है, उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया गया है।

प्रच्छेदनिवृत्तारणाभ्यां वा प्राणस्य॥ 1/34

अर्थात्- प्रश्वास करने के पश्चात् प्राण को बाह्य कुभक के द्वारा बाहर रोकने से चित्त में स्थिरता उत्पन्न होती है।

वीतरागविषयं वा चित्तम्॥ 1/ 37॥

अर्थात्- ऐसे योगी व महापुरुष जिन्होंने साधना के द्वारा चित्त की सर्वोच्च स्थिरता को प्राप्त किया है, उन्हें भी ध्यान का आलम्बन बनाने से चित्त को स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ 1/39॥

अर्थात्- शास्त्रानुकूल विषयों में से चित्त की सहजता व अनुकूलता जिस विषय पर अधिक हों, उसको भी ध्यान का विषय बनाकर चित्त की स्थिरता को प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार की अन्य विधियों का भी योगसूत्र में वर्णन किया गया है।

विश्लेषण- संसारिक दुःखों से मुक्ति के लिये मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करने वाले साधक को चित्त निर्मलता व एकाग्रता के पश्चात् कुछ प्रमुख स्थितियों से भी साधक को गुजरना पड़ता है, जो साधक के चित्त को इस प्रकृति के स्थूल तत्व से लेकर सूक्ष्म तत्व तक का ज्ञान प्रदान करती है, ज्ञान वैराग्य का आगमन करता है, बिना ज्ञान के इस परिवर्तनशील जगत की नश्वरता का समझना दुर्लभ कार्य है, धारणा द्वारा ध्येय को स्पष्ट रूप से चित्त में स्थिर कर, ध्यान के द्वारा उसमें एकाग्रता स्थापित कर, समाधि की अवस्था में ध्येय के साथ एकात्मिकता को प्राप्त किया जाता है, योगदर्शन में ध्यान से समाधि की अवस्था में प्रवेश करते समय हमें समापत्ति रूपी प्रज्ञा को भी प्राप्त करना होता है, शास्त्रों में समापत्ति जैसे विषय के बारे में हमें कम ही वर्णन देखने को मिलता है, इसिलिये हमने इस विषय को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप से यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

एकाग्र भूमि को प्राप्त चित्त वशीकार भाव को ग्रहण करता हुआ, क्रमशः सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि की ओर आगे बढ़ता है, इसी समयान्तराल में साधक को प्रज्ञा प्राप्ति में सहायक समापत्तियों की अवस्थाओं से भी गुजरना पड़ता है, योगदर्शन समापत्ति का प्रथम पाद के 41वें सूत्र में इस प्रकार वर्णन करते हैं,

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेरहीतुग्रहणग्राह्येषु तत्स्थितदञ्जनता समापत्ति ॥ 1/41॥

अर्थात्- जिस प्रकार शुद्ध स्फाटिक मणि सामीप्य प्राप्त वस्तु के समान स्वयं को प्रतिबिम्बित करनी लगती है, उसी प्रकार वृत्तियों के क्षीण हो जाने पर शुद्ध मणि के समान चित्त भी ग्रहीता, ग्रहण व ग्राह्य के समान प्रतीत होने लगता है, चित्त का सामीप्य स्थित पदार्थ के साथ एकात्मिकता को ग्रहण करना ही समापत्ति कहा जाता है।

एकाग्र भूमि प्राप्त चित्त अभीष्ट विषय में स्थिर होकर जिस समाधि स्थिति को प्राप्त करता है, उसे भी समापत्ति कहते हैं, समापत्ति रूपी प्रज्ञा ही परिपक्व होकर सम्प्रज्ञात योग को सिद्ध करती है, समापत्ति प्राप्त चित्त के जो भेद होते हैं, उन्हें निम्न प्रकार कहा गया है।

विषय भेद से समापत्ति तीन प्रकार की होती है, ग्रहीत विषयक, ग्रहण विषयक, व ग्राह्य विषयक, प्रकृति के भेद से समापत्ति के सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार आदि प्रमुख भेदों को बताया गया है।

ग्राह्य विषयक समापत्ति: इसके तीन विभाग हैं, प्रथम – भौतिक पदार्थ गौ, घट आदि, द्वितीय – स्थूल पंचमहाभूत, तृतीय – सूक्ष्म तंमात्राएँ।

ग्रहण विषयक समापत्ति: बाह्य आभ्यान्तर इन्द्रिय विषयक, बाह्यन्द्रिय – ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय व प्राण. अन्तःइन्द्रिय – बाह्यन्द्रिय का नेता मन जो संकल्पात्मक है, मन, बुद्धि व अहंकार ही मूल अन्तःकरण हैं।

ग्रहीत विषयक समापत्ति: यहाँ ग्रहीता से आशय पुरुष तत्त्व यानि आत्मा से नहीं है, अपितु बुद्धि तत्त्व से है,

यहाँ समापत्ति का विषय पुरुष तत्त्व नहीं अपितु अज्ञान के कारण बुद्धि की पुरुष के स्वामित्व के साथ एकरूपता है।

योगसूत्र के 42 वें सूत्र में सवितर्क समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः॥ 1/42॥

अर्थात्- शब्द, अर्थ व ज्ञान अपने भिन्न-2 धर्म रखते हैं, एकाग्र अवस्था में सम्पन्न समाधि में प्राप्त जो प्रज्ञा शब्द अर्थ व ज्ञान के मिश्रित रूप में प्राप्त होती है, उसे सवितर्क समापत्ति कहते हैं, वितर्क का अर्थ है विशेष तर्क, तर्क शब्द का प्राचीन अर्थ शब्दमय चिन्ता है, तर्क का विश्लेषण करके देखने से उसमें शब्द अर्थ तथा ज्ञान की संकीर्ण या मिश्रित अवस्था देखने को मिलती है, इस प्रकार का ज्ञान ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिये उपयोगी नहीं है, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधक को साधना मार्ग पर और आगे जाना होता है, समापत्ति के द्वारा साधक केवल लौकिक विषयों का ही ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं, अपितु तत्त्व विषयक प्रज्ञा लाभ ही समापत्ति का मुख्य फल होता है, इसके द्वारा वैराग्य सिद्ध होता है, सवितर्क समापत्ति में प्राप्त ज्ञान श्रुतानुमान ज्ञान से मिश्रित होता है।

योगसूत्र के 43 वें सूत्र में निर्वितर्क समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्यैर्वार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ 1/43॥

अर्थात्- निर्वितर्क समापत्ति में ध्येय विषय के केवल अर्थ मात्र का ज्ञान होता है, यहाँ विषय सूक्ष्म रूप में प्रकट होता है, यह परम प्रत्यक्ष है, यह ज्ञान श्रुतानुमान ज्ञान से अलग है तथा उनका बीज रूप है, इस स्थिति में शब्द व ज्ञान से मिश्रित स्मृति विलीन होने पर ग्राह्य स्वरूप से उत्पन्न प्रज्ञा अपने पूर्व संचित ग्रहणात्मक प्रज्ञा स्वरूप को मानो त्यागकर केवल पदार्थ के आकार की ग्राह्य स्वरूप की प्राप्ति के अनुकूल हो जाती है, इसे ही निर्वितर्क समापत्ति कहते हैं, इस समापत्ति में प्राप्त ज्ञान ध्येय विषय का सूक्ष्मतम ज्ञान होता है, तंमात्राओं को भूतों जनक का कहा जाता है, निर्वितर्क समापत्ति में ध्येय निर्माण में सहायक तंमात्राओं का उनके धर्मों सहित ज्ञान होता है, यह ज्ञान सत्य ज्ञान होता है, परन्तु इसे ऋत ज्ञान नहीं कहा जा सकता है, यह विकल्प रहित ज्ञान होता है, साधक इस समापत्ति के अन्तर्गत ध्येय को सूक्ष्म गुणों से युक्त देखता है।

योगसूत्र के 44 वें सूत्र में सविचार व निर्विचार समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ 1/44॥

अर्थात्- ध्येय के सूक्ष्म तंमात्राओं का व सूक्ष्म भूत विषयों का शब्दादि विकल्पों से संकीर्ण प्रज्ञा के द्वारा जब चित्त को ज्ञान होता है, तब उसे सूक्ष्म भूत-विषयक सविचार समापत्ति कहा जाता है, ध्येय विषय की तंमात्राएँ ही सविचार समापत्ति का विषय होते हैं, इस समापत्ति में प्राप्त ध्येय विषयक ज्ञान देश, काल व निमित्त से रहित होकर होता है।

निर्विचार समापत्ति: सविचार समापत्ति में कुशलता होने पर जब शब्दादि की संकीर्ण स्मृति हट जाती है, देश, काल तथा निमित्त सहित ध्येय विषयक सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है, यह ज्ञान सर्वदेशस्थ, सर्वकालव्यापी एवं साथ ही सर्वधर्मों के साथ प्रकाशित होता है, इस अवस्था में प्राप्त ज्ञान में हम ध्येय विषय के निर्माण में कारणभूत तंमात्राओं का तथा उस पदार्थ के स्वरूप का सभी देशों में, सभी कालों में व पदार्थ विशेष की ज्ञान प्राप्ति में सहायक सभी निमित्त धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

निर्विचार समापत्ति की सिद्धता के पश्चात् साधक को अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति होती है जो ऋत रूपी प्रज्ञा की प्राप्ति में सहायक होता है, ऋत ज्ञान शुद्ध ज्ञान होता है, इसमें किसी भी प्रकार का अन्य ज्ञान मिश्रित नहीं होता है, ये सब समापत्तियाँ दृश्य पदार्थों का अवलम्बन करके उत्पन्न होती हैं, अतः ये बहिर्वस्तुबीज कहलाते हैं,

इसके उपरान्त आनन्दानुगत समाधि में साधक इन्द्रियों का साक्षात्कार करता है, फिर क्रमशः आगे आस्मिन्तानुगत समाधि में अहंकार का साक्षात्कार करता है, ध्यान की अवस्था को पूर्ण करने के पश्चात् समाधि की उच्च अवस्थाओं में जब साधक अहंकार का भी साक्षात्कार कर लेता है, उस अवस्था में उसकी बुद्धि कलेशों आदि से पूर्णतः शुद्ध होकर विवेक ज्ञान प्रकट करती है, इस स्थिति तक प्राप्त समाधियों को सालम्बन समाधि कहा जाता है, तदुपरान्त विवेकख्याति, धर्ममेघ समाधि आदि की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ साधक असम्प्रज्ञात समाधि या निर्बीज समाधि को प्राप्त करता है, इसके बाद साधक कैवल्य अवस्था में प्रवेश कर संसारिक बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

निष्कर्ष: योगदर्शन में वर्णित ज्ञान हमें जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है, अन्तरंग साधना में प्रवेश के बाद चित्त की एकाग्रता गहनता की ओर बढ़ने लगती है, परिवर्तनशील जगत् की नश्वरता का बोध तथा संस्कारों के सम्मुच्चय को नष्ट करने की प्रक्रिया ध्यान की उच्च अवस्थाओं

में ही संभव हो पाती है, प्रस्तुत लेख अन्तरंग साधनाओं के अन्तर्गत आने वाली महत्वपूर्ण स्थितियों समापत्तियों का उल्लेख करता है, इनके द्वारा प्राप्य ज्ञान भौतिक जगत की क्षणभंगुरता का क्रमशः बोध कराकर बुद्धि के शुद्धतम स्वरूप का निकट ला देता है, जो हमारी आन्तरिक जगत की आध्यात्मिक यात्रा के मार्ग में आने वाले अनेक रहस्यमयी आयामों का आविर्भाव करते हैं, सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति में ध्यान की उपयोगिता को समापत्ति का अभ्यास व चिंतन एक नयी दिशा प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. स्वामी हरिहरानन्द आरण्य (1980), पातंजल योग दर्शन, अनुवादक डा० रामशंकर भट्टाचार्य, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2013), मुक्ति के चार सोपान, योगा पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार).
3. डा० पी. वी. कर्मवेलकर (2005), पातंजल योगसूत्र, कैवल्यधाम योग संस्थान, लोनावला (महाराष्ट्र).
4. <https://www.researchgate.net/profile/ganesh-giri>, Access April 2021.
5. डॉ सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव (1988), पातंजल योगदर्शनम्, द्वितीय संस्करण, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
6. डॉ. बी. आर. शर्मा, पातंजल योगसूत्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि. आध्यात्म बोध, बाबू गोपीचंद जी गुप्त, नेहरू रोड, विले पार्ले पूर्व, मुंबई
7. वाचस्पति मिश्र (1935), तत्त्ववैशारदी (सांख्यदर्शनम्), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
8. विज्ञानभिक्षु (1935), (योगवर्तिक सांख्यदर्शनम्), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
9. एस. राधाकृष्णन (1989), भारतीय दर्शन, राजपाल एंड सन्स नई दिल्ली
10. <http://www.enigmatic.yoga/portfolio/god-in-patanjalis-yoga-sutra>